

गांव, सरकारी स्कूल और चकमक क्लब

सुनील बागवान

मेरे घर वाले मुझे और मेरे बड़े भाई को पढ़ाना चाहते थे। स्कूल न जाने पर मेरी अक्सर पिटाई होती रहती थी। बस्ता लेकर घर से निकलना, किसी दोस्त के साथ खेत पर चले जाना या फिर कहीं खेलते रहना और स्कूल की छुट्टी के समय वापस घर लौट आना, लगभग हम चार-पांच दोस्तों की आदत बन गई थी। माता-पिता काम पर चले जाते थे। जब घर वालों को यह बात मालूम पड़ी तो मेरी जमकर पिटाई हुई। घर वाले अगले दिन कान पकड़कर स्कूल लेकर आए। घर और स्कूल में सख्ती कुछ ज्यादा ही बढ़ गई।

समय किसी तरह बीतता गया। मैं पांचवीं पास हो गया। मगर स्कूल कोई अच्छी लगने वाली चीज तो थी नहीं। पांचवीं की परीक्षा के बाद गर्मी की छुट्टी चल रही थी। हम आठ-दस दोस्त एक कमरे में कठपुतली का खेल खेल रहे थे। अखबारी कागज के नकली रुपये थे और अखबारी कागज के ही टिकट। अखबारी कागज, लकड़ी और पुराने कपड़ों से बनी थी कठपुतली। यह कठपुतली हमने एक दोस्त के यहां टीवी में देखकर बनाना सीखा था। इसी दौरान 21-22 वर्ष के चार-पांच लड़के आए। हमसे मुस्कुराते हुए बातचीत शुरू की - 'क्या कर रहे हो ?, तुम्हारी कठपुतली तो बहुत सुन्दर है', वगैरह-वगैरह। अन्त में पूछा कि, "हमें एक बड़ा कमरा किराए पर चाहिए। यह मकान किसका है ? क्या वो हमें किराए पर देंगे ?" बात आगे बढ़ी। हमने उन्हें मकान मालिक से मिलवा दिया। उन्होंने मकान किराए पर लेकर शुरू किया 'चकमक क्लब'। वे लड़के पिछले दो-तीन सालों से एकलव्य से जुड़े थे और चकमक क्लब के स्रोत साथी थे।

मैं भी 'चकमक क्लब' जाने लगा। वहां तो बहुत ही अच्छा लगने लगा। वहां बच्चों के लिए पढ़ने की किताबें, तरह-तरह के खिलौने, कविता-गाने गवाने वाले भैया-दीदी थे। कागज के खिलौने, चित्र बनवाना और खेल खिलवाना भी वे वहां पर करवाते थे। रोज शाम को दो-तीन घंटे चकमक क्लब में जाना और वहां पर यह सब गतिविधियां मजे-मजे से करना सचमुच अच्छा लगता था। धीरे-धीरे हम बच्चों को वहां पर दूसरे भैया-दीदी की तरह गतिविधियां सिखाने के लिए 'स्रोत-साथी' बनने का मौका मिला। हमारा नाम, गतिविधि का नाम, सप्ताह का दिन आदि दीवार पर लिख दिया गया। अब उसे हम अपनी-अपनी जिम्मेदारी समझ कर पूरा करते थे।

कौन-सा सामान लगेगा, ज्यादा बच्चे आ जाएंगे तो कैसे-कहां बिठाएंगे, सप्ताह और महीने की योजना बनाना, पुस्तकालय संभालना आदि सभी काम हम 14-15 साल के लड़के-लड़कियां गोल घेरे में बैठकर मीटिंग करते हुए तय करने लगे थे। सुबह होते ही हम बच्चों को चकमक क्लब के इन 2-3 घंटों का हर रोज इंतजार रहने लगा। स्कूल, घर, मोहल्ले में हर समय हम लोग चकमक क्लब की बातें किया करते थे। स्कूल में भी अब मजा आने लगा था। स्कूल के शिक्षक-शिक्षिका अब हमसे बहुत ही अलग तरह से बातें करते थे। स्कूल में 26 जनवरी और 15 अगस्त पर होने वाले कार्यक्रमों में 'चकमक क्लब' के स्रोत साथी बढ़-चढ़ कर भाग लेते थे। जागरूकता के लिए

यह अनुभव बच्चों के मन में शिक्षा के प्रति अरुचि एवं अनिच्छा पैदा करने वाली स्कूली शिक्षा के बरक्स सीखने के उस अनौपचारिक अनुभव को रखता है जो सहजता और आनन्द से युक्त है। साथ ही यह बताता है कि स्नेहिल वातावरण मिलने पर कैसे सीखने के प्रति ललक विकसित होती है। यह बच्चों के लिए पुस्तकालय की जरूरत को रेखांकित करता है और पाठ्यपुस्तकों से इतर साहित्य पढ़ना विषयगत समझ को कैसे बेहतर बनाता है, इसकी भी एक मिसाल प्रस्तुत करता है।

लेखक परिचय : बरकतुल्ला विश्वविद्यालय भोपाल से एम.फिल., एकलव्य द्वारा गठित चकमक क्लब के दो वर्ष तक संयोजक रहे। संप्रति : रायबरेली, उत्तर प्रदेश के स्वयंसेवी संगठन 'लोकमित्र' में शिक्षा कार्यक्रम में समन्वयक।

सम्पर्क : ग्राम/पोस्ट-सतवास, तहसील-कन्नोद, जिला-देवास-455459 मध्यप्रदेश

नाटक का मंचन और गीतों की प्रस्तुति के लिए हमारे 'चकमक क्लब' का स्थान पक्का रहता था। आसपास के गांवों के स्कूलों में भी हम चकमक क्लब के साथी 'बाल मेलों' का आयोजन करने लगे थे। चकमक क्लब में आने वाले बच्चों की रचनाओं और चित्रों के संग्रह- 'अंकुर' पत्रिका को स्कूल, बैंक, पुलिस थाना, दवाखानों, पंचायत, प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र आदि जगह हर महीने देने जाते थे। अधिकारियों, साथियों और बच्चों के पालकों को हम अपने चकमक क्लब और अंकुर पत्रिका के बारे में निःसंकोच बतलाते थे।



अफरोज पठान, राजेश वर्मा, अभिषेक सोलंकी, रामाधार पलाश्या, ताहिर अली और राकेश बिनौले, संगीता सिसोदिया, अर्चना टोंग्या, दीपिका विकरवार आदि चकमक क्लब के स्रोत साथी रहे हैं। इसमें कुछ मुस्लिम थे और कुछ हिन्दू। कुछ लोग बाजार चौक में रहते थे, तो कुछ गांव के अंतिम छोर पर- चर्मकार मोहल्ले में। कुछ कोने पर बसे मेवाती मोहल्ले में.... और कुछ...। इसमें कुछ साथियों के पिता मरे हुए जानवरों को उठाने का काम करते थे। कुछ साथियों के पिता भिक्षा मांगते थे, कुछ साथियों के पिता सरकारी नौकरी करते थे। कुछ के घरों में खेती होती थी तो कुछ के घरों में लकड़ी का सामान बनाने का काम होता था। कुछ साथियों के पिता झाड़वर थे। कुछ के पिता मंदिर में पूजा करने का काम करते थे। हम सब चकमक क्लब के साथी सुख-दुख के भी साथी थे। साथ रहना, साथ-साथ चकमक क्लब जाना, एक-दूसरे के घर आना-जाना, पिकनिक-भ्रमण पर जाना, साथ खाना सब कुछ मिलकर करते थे। मिलकर तरह-तरह की योजनाएं बनाना, कुछ नया करना- करते रहना यही हमारा सपना और सोच रहता था। जब हम देखते कि जात-पात के नाम पर हमारे परिवार में, हमारे आस-पास भेदभाव किया जा रहा है तब हमें गुस्सा आता था। जब हमें ऐसे लोग मिलते जो धार्मिक पांखड और अंधविश्वासों की बातें करते तब हम विरोध करते थे। जब वे अपनी बेटियों, लड़कियों, बहनों को चकमक क्लब जाने पर रोक लगाते थे तब हम संवाद करते थे। हमें अच्छा लगता था जब हम पाते कि इस तरह के विरोध प्रदर्शन या संवाद करने पर लोग हमारी बात सुनने और समझने के लिए मजबूर होते थे। इन सबमें थोड़ी-सी भी सफलता हमें खुशी से भर देती थी।

जब कोई बिना एन्ट्री किए चकमक क्लब से किताबें लेता या देता, चकमक क्लब के फेविकोल से कोई अपने घर पर फोटो चिपकाता

या फिर चकमक क्लब के भीतर या किसी कार्यक्रम में कोई भी साथी अपने व्यवहार में किसी भी तरह की लापरवाही बरतता तो इन सब बातों पर हम आपस में झगड़ते थे। बहस करते थे। सामूहिक चर्चा करते थे। हम कोशिश करते थे कि चकमक क्लब की सामग्री का सदुपयोग हो। उससे चकमक क्लब के बच्चे रोज सीखें ही, साथ ही गांव के स्कूल के सब बच्चे, आस-पास के गांव के बच्चे भी सीखें। हम सब जो भी करते थे वह सब सचमुच का था- दिखावा बिल्कुल नहीं था।

कुछ लोग कहते थे कि लड़के-लड़कियां चकमक क्लब जाने से बिगड़ जाएंगे। पढ़ाई-लिखाई तो करते नहीं हैं फेल हो जाएंगे। वहां पर तो वो

मुसलमान है (चकमक क्लब के संयोजक एक मुस्लिम साथी थे जिनका चयन वहां के बच्चों और स्रोत साथियों ने किया था)। उनका तो सब खाना-पीना चलता है। बच्चों को मत जाने दिया करो वहां पर।

घर वाले मुझसे खुश थे क्योंकि उन्हें अब स्कूल जाने के लिए नहीं कहना पड़ता था। हम अपने ही गांव के स्कूल के बच्चों को सिखाने जाने लगे थे। तरह-तरह की किताबें घर पर पढ़कर सुनाते थे। छोटे बच्चे हमें भैया नमस्ते, भैया नमस्ते कहते थे। सभी साथियों का ईद पर किसी के घर सिवइयां खाने जाना, मिलने-जुलने का कभी घर वालों ने सीधे-सीधे विरोध नहीं किया। धीरे-धीरे हम सबके बीच प्रेम और दोस्ताना बढ़ता रहा।

मैं दसवीं की परीक्षा दे रहा था। उस समय शाकिर भैया बाहर नौकरी करने जाने वाले थे। चकमक क्लब का नया संयोजक किसे बनाएं यह एक सवाल था। चर्चा के बाद चकमक क्लब के स्रोत साथियों एवं बच्चों ने मुझे संयोजक चुना। चकमक क्लब की दैनिक गतिविधियां, अंकुर पत्रिका का प्रकाशन, स्कूलों में बाल मेले, विज्ञान कार्यशालाएं आदि शाकिर भाई के जाने के बाद भी हम साथी निरंतर जारी रख पाए। मैंने दसवीं के बाद विज्ञान विषय चुना था। गांव के स्कूल में सब विज्ञान को एक कठिन विषय के रूप में जानते थे। हमारे गांव में दसवीं, बारहवीं का परीक्षा परिणाम 35-40 प्रतिशत ही रहता था। अतः चकमक क्लब में हमने नियम बनाया कि जो भी साथी दसवीं या बारहवीं कक्षा में हैं, वे बाल मेले या चकमक क्लब के किसी भी कार्यक्रम में स्कूल या पढ़ाई छोड़कर नहीं जाएंगे। मैं भी बारहवीं में था। चकमक क्लब के स्रोत साथियों ने मुझे भी बाहर के कार्यक्रमों के लिए मना कर दिया। मैंने सन् 1999 में कक्षा बारहवीं 73 प्रतिशत अंकों के साथ उर्तीण की। घर, परिवार, स्कूल, चकमक क्लब, एकलव्य आदि सभी जगह लोग खुश

थे। गांव में बारहवीं तक ही स्कूल था। शायद मेरे परिवार का सपना भी बारहवीं तक पढ़ाना ही था। मगर सोचा की अच्छे नम्बर आए हैं तो बाहर पढ़ने भेज जाना चाहिए। मैंने इन्दौर जाना तय किया। इसके बाद चकमक क्लब के बच्चों, स्रोत साथियों तथा संयोजक ने मिलकर चकमक क्लब के एक अन्य साथी राकेश बिनौले को चकमक क्लब का नया संयोजक चुना।

सोचने-समझने वाले इंसान का बनना

मैंने गांव और शहर दोनों जगह के सरकारी स्कूल देखे हैं। सरकारी स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों की सामाजिक-आर्थिक दशाओं को नजदीक से देखा है, महसूस किया है। बच्चों के विकास और शिक्षा की प्रक्रिया पूरा होने में बाधक तत्वों को जाना और समझा है। इन कारणों और परिस्थितियों को देखकर आज लगता है कि अगर कक्षा पांचवीं की गर्मी की छुट्टी में उन स्रोत साथियों से मुलाकात नहीं होती, चकमक क्लब नहीं होता तो मैं भी गांव के सरकारी स्कूल की किसी कक्षा तक शायद पढ़ाई करके काम धंधे से लग गया होता और एक हिन्दूवादी मानसिकता लिए सांसें ले रहा होता। ऐसा इसलिए भी लगता है कि शिक्षा के स्रोत कहे जाने वाले स्कूलों में परिवार के दबाव के चलते बच्चे स्कूल के अनुकूल होकर लिखना-पढ़ना सीख लेते हैं। कॉलेज में पढ़कर युवा 'एक नौकरी या काम' पा लेते हैं। यह और बात है कि किसको कौन-सी शिक्षा मिलेगी यह आज के समाज में आर्थिक ताकत के आधार पर तय होता है (पिछले समाज



में जाति के आधार पर होता था)। तमाम मुश्किलों या प्रयासों के बाद अकादमिक स्तर पर शिक्षित हुए इंसान की समझ कैसी रहती है ? उसकी समझ बदलती है तो कितनी ? और कितने लोगों की ?

कहना यह चाहता हूं कि स्कूल और कॉलेज समाज में धर्म, जाति व लिंग के आधार पर होने वाले भेदभाव को उखाड़ फेंकने में असफल ही हुए हैं। साथ ही साथ आर्थिक सत्ता को भी मजबूती प्रदान करते हैं- उसका समर्थक भी बनाते हैं। इससे अंततः एक हिन्दू परिवार में जन्मा बच्चा हिन्दू तथा मुसलमान परिवार

में जन्मा बच्चा मुसलमान ही बना रहता है। शिक्षा, स्वास्थ्य में सुधार, गरीबी उन्मूलन, नारी सशक्तीकरण, अंधविश्वास निवारण, सांप्रदायिक सद्भाव आदि के लिए विभिन्न संगठनों के द्वारा तरह-तरह के कार्यक्रम होते हैं। एक पक्ष किसी कार्यक्रम के आयोजनकर्ताओं का होता है, दूसरा पक्ष उनका जिनके लिए यह कार्यक्रम बनाया जाता है। इन कार्यक्रमों का अपना महत्त्व है, लेकिन ऐसा बहुत ही कम होता है कि हम खुद अपने विकास और अपनी समझ के लिए आयोजन एवं कार्यक्रमों का निर्धारण करते हों, सोचते हों, अपने पिछड़ेपन के कारणों को तलाश करते हों और उनके निवारण के लिए साझा प्रयास करते हों।

अपने पिछले अनुभवों को याद करते हुए बार-बार लगता है कि चकमक क्लब जैसी जगह के होने से कितने बच्चे सोचने समझने वाले इंसान बने हैं। ♦



'शिक्षा में साझेदारी ?' शिक्षा में सार्वजनिक-निजी साझेदारी पर केन्द्रित विशेषांक।

पृष्ठ-104, मूल्य : 70 रुपये

'इतिहास शिक्षण विशेषांक' आरंभिक शिक्षा में इतिहास शिक्षण के उद्देश्य, समस्याएं एवं पद्धति पर केन्द्रित।

पृष्ठ-76, मूल्य : 50 रुपये

मंगवाने के लिए संपर्क करें :

शिक्षा विमर्श, दिगन्तर, टोडी रमजानीपुरा,
खोनागोरियान रोड, जगतपुरा, जयपुर-302025

फोन : 0141-2750230, 2750310

ईमेल : shikshavimars@gmail.com

